बच्चे और इस्लाम

सैयद ज़लालुद्दीन उमरी
अनुवाद
नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।

दो शब्द

इंसान का छोटा-सा बच्चा क़ुदरत का अजीब करिश्मा है। उसके भोले-भाले व्यक्तित्व में कितना सम्मोहन और आकर्षण होता है! उसकी मासूम अदाएँ, उसकी मुस्कुराहट, उसकी दिलचस्प और टूटी-फूटी बातें, उसकी चंचलता और शरारतें, उसका खेल-कूद, मतलब यह कि उसकी कौन-सी अदा है जो दिल को लुभाती और सुरूर और ख़ुशियों से न भर देती हो। फिर एक-दूसरे पहलू से देखिए। हमें नहीं मालूम कि क़ुदरत ने किस बच्चे में कितनी और किस प्रकार की सलाहियतें रखी हैं और वह आगे चलकर कौन-सी सेवा या कार्य करनेवाला है। हो सकता है कि आज के इन मासूमों में कोई किसान और व्यापारी हो, कोई इंजीनियर और उद्योगपति हो, कोई पत्रकार और लेखक हो, कोई शिक्षक और क़ानूनदाँ हो, कोई वैज्ञानिक और दार्शनिक और कोई अच्छा राजनीतिज्ञ, विचारक और कुशल प्रशासक हो। अभी कुछ नहीं कहा जा सकता कि परिवार, क़बीला, क़ौम, देश और मानवता को उनमें से किसके द्वारा कितना बड़ा लाभ पहुँचेगा।

इतनी बड़ी क्षमता और सलाहियतें जिस बच्चे के अन्दर छिपी हुई होती हैं, वह अपनी पैदाइश के वक़्त सबसे कमज़ोर और बे-बस होता है। वह अपने पालन-पोषण, परवरिश और विकास के लिए जितनी देख-भाल, स्नेह और मेहनत का ज़रूरतमन्द होता है, किसी दूसरे जानदार का बच्चा इतनी तवज्जोह नहीं चाहता। ज़रा-सी असावधानी और कोताही से उसकी ज़िन्दगी ख़तरे में पड़ सकती है। उस का बौद्धिक, मानसिक और नैतिक प्रशिक्षण तो इससे भी ज़्यादा जटिल और मुश्किल काम है इस मामले में ग़लती या कोताही उसे बिलकुल ग़लत दिशा में लेजा सकती है और उसका अस्तित्व पूरे समाज के लिए एक बड़ी मुसीबत बन सकता है। लेकिन अगर सही ढंग से उसकी शिक्षा-दीक्षा हो तो वह समाज को सुख-शान्ति और चैन से भर सकता है।

पूरे समाज के लिए इनसान के एक-एक बच्चे का बड़ा महत्व है। वह माँ-बाप की आँखों की ठंडक, उनका सुख-चैन और उनकी कामनाओं का केन्द्र होता है। बुढ़ापे में वे उसे अपना सबसे बड़ा सहारा समझते हैं। कुटुम्ब और परिवार की अनगिनत उम्मीदें उससे जुड़ी होती हैं। क़ौम और देश का वह बहुमूल्य धन होता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति की नैतिक और क़ानूनी

ज़िम्मेदारी है कि बच्चे के शारीरिक और नैतिक विकास की चिन्ता करें औ उसे बीमारी, कमज़ोरी, अज्ञानता और ग़लत रास्ते पर भटकने से बचाएँ।

बच्चों के अधिकारों की ओर पश्चिमी राष्ट्रों का ध्यानाकर्षित हुआ तो इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने विभिन्न क़दम उठाए। यूनाइटेड नेशन्ज़ जनरल एसेम्बली (United Nations General Assembly) ने 1954 ई॰ में बाल-दिवस मनाने की उद्घोषणा की। 1959 ई॰ में बच्चों के अधिकारों का आदेश-पत्र (Declaration of the Rights of the Child) स्वीकार किया गया बच्चों के आहार, शिक्षा, स्वास्थ्य और सेहत जैसी बातों की ओर ध्यान दिलाने के लिए 1979 ई॰ को बाल-वर्ष मनाने की घोषणा हुई। यह पुस्तिका इसी बात को ध्यान में रखकर लिखी गई, ताकि इस्लामी शिक्षाएँ, जो बच्चों से सम्बन्धित हैं, सामने आ सकें।

पश्चिम हर अच्छे काम को अपने से जोड़ता है। बच्चों के अधिकारों के बारे में की जा रही कोशिशों को भी वह अपना कारनामा समझता है हालाँकि बहुत पहले से बच्चों के सिलसिले में इस्लाम की बड़ी सटीक और सर्वपक्षीय शिक्षाएँ विद्यमान हैं। इस विषय पर इस विनीत के विस्तृत लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तिका में कुछ हद तक उन्हीं का निचोड़ पेश किया गया है। वस्तुतः यह पुस्तिका उर्दू में लिखी गई है जिसका यह हिन्दी अनुवाद आपके हाथों में है। इसका तेलगू अनुवाद बहुत पहले प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी अनुवाद का यह संशोधित संस्करण है इसमें मैंने बहुत-से सुधार किए हैं और नवीन जानकारियाँ देकर इसे और उपयोगी बनाने का प्रयास किया है। उद्धृत उद्धरणों का भी पुनरावलोकन करके सन्तुष्टि कर ली है। मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्ज़ के प्रति आभार व्यक्त करना चाहूँगा कि वह इस पुस्तिका को अच्छे मेयार के साथ प्रकाशित करने का उत्तरदायित्व निभा रहा है।

जलालुद्दीन उमरी

01 मार्च 201?

इस्लामी शिक्षाएँ

इस्लाम ने ज़िन्दगी के दूसरे हिस्सों में जिस तरह हमारी बेहतरीन रहनुमाई की है, उसी तरह बच्चों से सम्बन्धित उसकी शिक्षाएँ और तालीमात हर पहलू से मुकम्मल हैं और उन समस्त ख़राबियों से पाक हैं, जो साधारणतः किसी भी मानव-चिन्तन में पाई जाती हैं। यहाँ इसकी ये शिक्षाएँ बहुत ही संक्षेप में प्रस्तुत की जा रही हैं–

औलाद के क़त्ल पर रोक

इनसान ने अपने पूरे इतिहास में जितने भयानक अपराध किये हैं, उनमें एक औलाद का क़त्ल भी है। उसने अपनी ना-समझी, अज्ञानता, अन्धविश्वास, ग़लत रस्म-रिवाज और बुरे जज़्बात के तहत अपने ही हाथों से अपने बच्चों का ख़ून बहाया है। इस निर्ममता और कठोरता का एक बड़ा क़ारण ग़रीबी का डर भी रहा है। उसने यह सोचकर कि उसकी आमदनी में उसकी औलाद भी शरीक हो जाएगी, खानेवाले मुँह कमानेवाले हाथों से ज़्यादा हो जाएँगे और उसकी ज़रूरतें पूरी न हो सकेंगी, तो उसने बड़ी निर्दयता और बेरहमी से अपने ही जिगर के टुकड़ों पर छुरी फेर दी। इस्लाम से पूर्व अरब के कुछ क़बीलों में भी इस कुप्रथा का चलन था। इस्लाम ने इसकी घोर निन्दा की और इस निर्दयता और बेरहमी को एक संगीन अपराध ठहरा दिया। उसने कहा कि इस ज़मीन पर जो इनसान भी पैदा होता है, वह अल्लाह के हुक्म से पैदा होता है। यह सोचना कि जिस बच्चे को अल्लाह ने पैदा किया है वह उसे भूखा मार देगा, ईश्वर के अन्नदाता होने पर बहुत बड़े अविश्वास का प्रदर्शन है। यद्यपि उसके हाथ में ज़मीन और आसमान के ख़ज़ाने हैं, वह तुम्हें भी खिलाएगा और तुम्हारे बच्चों को भी। क़ुरआन में है–

"ग़रीबी के डर से अपनी औलाद को क़त्ल न करो, हम उन्हें भी रोज़ी देंगे और तुम्हें भी। बेशक उनको क़त्ल करना बहुत बड़ा अपराध है।" (क़ुरआन, 17/31)

लड़कों से तो फिर भी भविष्य की आशाएँ जुड़ी होती थीं कि आर्थिक दौड़-धूप में आगे चलकर साथ देंगे, दुश्मनों से रक्षा करेंगे और परिवार और कुटुम्ब की शक्ति में बढ़ोत्तरी का कारण बनेंगे, लेकिन लड़कियों के तो वुजूद ही को शर्मनाक समझा जाता था। वे आर्थिक दृष्टि से भी बोझ थीं और उनकी हिफ़ाज़त और रक्षा भी करनी पड़ती थी, इसी लिए उनकी हत्या का अधिक चलन था। इस्लाम ने ख़ास तौर से इसकी आलोचना की। कहा कि कल क़ियामत के दिन अल्लाह उस अबोध बालिका से पूछेगा कि आख़िर उसने वह कौन-सा अपराध किया था कि उसे ख़ुद उसके माँ-बाप ने ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ दिया। जब वह बच्ची अपने ऊपर किए हुए ज़ुल्म और अपनी बेबसी की फ़रियाद करेगी, तो ज़ालिमों को अल्लाह के अज़ाब से कोई चीज़ बचा न सकेगी। क़ुरआन में कहा गया—

> "और जब उस बच्ची से, जिसे ज़िन्दा गाड़ा गया था, पूछा जाएगा कि आख़िर उसे किस गुनाह के बदले मारा गया।"
>
> (क़ुरआन, 81:8,9)

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अल्लाह की ओर से इस घिनौनी हरकत के अवैध और वर्जित होने का एलान इन शब्दों में किया—

> "बेशक अल्लाह ने माओं की नाफ़रमानी और लड़कियों को ज़िन्दा गाड़ देने को तुम्हारे लिए हराम कर दिया है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

देवी-देवताओं के नाम पर औलाद को भेंट चढ़ाने का भी विभिन्न धर्मों में चलन रहा है, हालाँकि धर्म के नाम पर इस तरह की अशुभ हत्या स्वयं धर्म का अपमान है। ईश्वर ने इस बात का कहीं आदेश नहीं दिया है कि उसकी ख़ुशी हासिल करने के लिए बेगुनाह जानों का ख़ून बहाया जाए। इस्लाम ने तो इस तरह की धार्मिकता को कोई स्थान ही नहीं दिया है। एक औरत ने हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) से कहा कि मैंने यह मन्नत मानी है कि अपने बच्चे की क़ुरबानी करूँ।

उन्होंने बच्चे को क़ुरबान करने से रोका और कहा कि जाओ अपनी मन्नत का प्रायश्चित करो। (हदीस : मुवत्ता)

माँ-बाप की शुद्ध भावनाओं की रिआयत

इस्लाम ने एक ओर तो बच्चों को ख़ुद उनके माँ-बाप की ओर से होनेवाले अन्याय और ज़ुल्म से बचाया और दूसरी ओर बच्चों के बारे में माँ-बाप की शुद्ध और स्वाभाविक भावनाओं को भी ध्यान में रखा। उनके जन्म पर ख़ुशी मनाने का सभ्य एवं शिष्ट तरीक़ा भी सिखाया और उनके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में अति सारगर्भित और हर पहलू से पूर्ण निर्देश दिए।

नवजात शिशु के कान में अज़ान दी जाए

इस्लाम एक विशेष प्रकार की सभ्यता और संस्कृति को अस्तित्व में लाता है। वह कुछ ख़ास शिष्टाचार सिखाता है और पूरे माहौल को एक ख़ास रंग देता है। इसका प्रावधान वह उसी समय से करता है जबकि बच्चा इस दुनिया में क़दम रखता है। अतः उसने शिक्षा दी कि बच्चे के पैदा होते ही उसके कान में अज़ान[1] दी जाए।

हज़रत अबू राफ़ेअ (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के नवासे हज़रत हसन (रज़ि०) पैदा हुए तो आप (सल्ल०) ने उनके कान में अज़ान दी। (हदीस : मुवत्ता)

---

[1] अज़ान एक अरबी शब्द है, जिसका अर्थ बुलाना और पुकारना है। इस्लामी शरीअत में यह शब्द नमाज़ के लिए बुलाने और पुकारने के लिए इस्तेमाल होता है। पाँचों नमाज़ के वक़्त यह अज़ान दी जाती है। यह अज़ान अरबी भाषा में दी जाती है, जिसका अर्थ यह है :–

'अल्लाह ही बड़ा है, अल्लाह ही बड़ा है। अल्लाह ही बड़ा है, अल्लाह ही बड़ा है। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवाय कोई पूज्य-प्रभु नहीं, मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई पूज्य प्रभु नहीं। मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। आओ नमाज़ की तरफ़, आओ नमाज़ की तरफ़। आओ कामियाबी की तरफ़, आओ कामियाबी की तरफ़। अल्लाह ही बड़ा है, अल्लाह ही बड़ा है। उसके सिवा कोई पूज्य प्रभु नहीं।' (अनुवादक)

बच्चे के कान में उस समय अज़ान देने के कई मक़सद हैं। इसका एक मक़सद यह है कि ख़ुशी के अवसर पर अल्लाह का नाम लिया जाए और उसकी बड़ाई बयान की जाए। दूसरा मक़सद यह है कि अल्लाह का नाम लेकर और उसका ज़िक्र करके माहौल को शैतान के प्रभावों और असरात से बचाया जाए। तीसरा मक़सद यह है कि इस प्रकार इस बात का एलान किया जाए कि बच्चे के माँ-बाप भी मोमिन और मुस्लिम तथा अल्लाह के आज्ञाकारी हैं और बच्चे को भी वे अल्लाह का आज्ञाकारी और फ़रमाँबरदार देखना चाहते हैं। चौथे यह कि बच्चे के कान में सबसे पहले अल्लाह की महानता और बड़ाई, रसूल की रिसालत (ईश-दूतत्त्व) और इनसान के बन्दा (दास) होने की आवाज़ पहुँचे। आश्चर्य नहीं कि यह आवाज़ अचेतन रूप में बच्चे के दिल और दिमाग़ पर प्रभाव भी डालती हो।[1]

तहनीक कराई जाए

इस अवसर पर किसी नेक और सदाचारी व्यक्ति द्वारा तहनीक कराना भी नबी (सल्ल॰) से साबित है। तहनीक का मतलब है : छुहारा चबाकर उसका रस या शहद आदि कोई मीठी चीज़ बच्चे को चटाई जाए, ताकि बच्चे के पेट में पहले जो खाना पहुँचे वह किसी अल्लाहवाले, धर्मपरायण और नेक व्यक्ति के हाथ से पहुँचे और उसकी दुआ उसे हासिल हो।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) कहती हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल॰) के पास बच्चों को लाया जाता था, आप (सल्ल॰) उनके लिए बरकत की दुआ करते और तहनीक फ़रमाते। (हदीस : मुस्लिम)

अच्छा नाम रखा जाए

हुक्म है कि बच्चे का ऐसा अच्छा नाम रखा जाए जिससे उसका अच्छा परिचय मिलता हो, बेढंगे या निरर्थक और अक़ीदे के विरुद्ध नाम

[1] एक संकेत यह भी मिलता है कि ज़िन्दगी की ओर आना वास्तव में नमाज़ की तरफ़ आना है। इसलिए इसके बिना ज़िन्दगी अधूरी और वास्तविक उद्देश्य से वंचित रह जाती है। (अनुवादक)

रखने को पसन्द नहीं किया गया है।[1] हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

> "क़ियामत के दिन तुम्हें तुम्हारे नामों से और तुम्हारे बापों के नामों से बुलाया जाएगा, इसलिए अपने (और अपनी औलाद आदि के) अच्छे नाम रखो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

नाम रखने के सिलसिले में कुछ निश्चित सुझाव भी दिए गए हैं। जैसे यह कि पैग़म्बरों और अल्लाह के नेक बन्दों के नाम पर नाम रखने चाहिएँ। सबसे अच्छे नाम वे हैं जिनसे ख़ुदा की दासता और वफ़ादारी का भाव प्रकट हो। ऐसे नाम भी रखे जा सकते हैं जिनसे व्यवसाय और पेशे का परिचय मिलता हो। अबू-वहब हबशमी (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

> "पैग़म्बरों के नाम पर नाम रखो। अल्लाह की नज़र में सबसे अधिक प्रिय नाम अब्दुल्लाह (अल्लाह का बन्दा) और अब्दुर्रहमान (रहमान का बन्दा) है, और सबसे अधिक सच्चा और वास्तविकता के अनुसार नाम हारिस (किसान) हम्माम (इरादेवाला) हैं। सबसे बुरे नाम हर्ब (युद्ध) और मुर्रा (कटु) हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

अक़ीक़ा किया जाए

औलाद एक नेमत है। उसके जन्म पर माँ-बाप को फ़ितरी ख़ुशी होती है। इस मौक़े पर अल्लाह के नाम पर जानवर ज़ब्ह करना इस्लामी तरीक़ा है। इसी को शरीअत की परिभाषा में 'अक़ीक़ा' कहा जाता है। यह हक़ीक़त में औलाद मिलने पर अल्लाह का शुक्र भी है और ख़ुशी का प्रदर्शन भी और उस बच्चे को मुक्त कराना भी है, जैसा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

---

[1] बहुत सम्भव है कि नाम का भी आदमी पर असर पड़ता हो। रूप भी आदमी का बड़ी हद तक परिचायक होता है, लेकिन इसमें व्यक्ति कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता किन्तु वह नाम तो अच्छा रख ही सकता है। (अनुवादक)

"बच्चा अपने अक़ीक़े की वजह से रेहन रहता है, इसलिए सातवें दिन उसकी ओर से जानवर ज़बूह किया जाए, उसका नाम रखा जाए और उसके सिर के बाल उतरवाए जाएँ। (हदीस : तिर्मिज़ी)

अक़ीक़े का गोश्त ख़ुद भी खाया जाता है, नातेदारों और दोस्तों को भी खिलाया जाता है और ग़रीबों और निर्धनों में भी बाँटा जाता है। ख़ुशी के मौक़ों पर इस्लाम चाहता है कि निर्धनों और ज़रूरतमन्दों की ज़्यादा-से-ज़्यादा मदद हो। अतएव इस मौक़े पर भी यह बात पसन्द की गई है कि बच्चे के सिर के बाल उतारकर उनके वज़न के बराबर चाँदी ग़रीबों को दान की जाए। हज़रत हसन (रज़ि०) के जन्म पर अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने हज़रत फ़ातिमा से कहा –

'इसका सिर मुंडवा दो और इसके बाल के वज़न के बराबर चाँदी दान में दे दो।' (हदीस : तर्मिज़ी)

बच्चों का लालन-पालन

इनसान की यह क़ानूनी और नैतिक ज़िम्मेदारी है कि वह अपने बाल-बच्चों के ख़र्च की ज़िम्मेदारी उठाए और उनके खाने-पीने, कपड़े, मकान, इलाज और दूसरी ज़रूरतों को पूरा करे। इस्लाम की नज़र में यह बहुत बड़ा गुनाह है कि इनसान अपने आर्थिक दायित्वों को न पहचाने, अपने सम्बन्धियों के भरण-पोषण में कोताही करे और उन्हें इस हाल में छोड़ दे कि वे निर्धनता और उपवास के शिकार हो जाएँ। अल्लाह के नबी (सल्ल०) का फ़रमान है –

"इनसान (की तबाही) के लिए यह गुनाह काफ़ी है कि वह उन लोगों को भुला दे जिनके ख़र्चे का वह ज़िम्मेदार है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

लड़कों का पालन-पोषण इनसान जिस ख़ुशदिली के साथ करता है, उतनी ख़ुशी के साथ लड़कियों का पालन-पोषण आम तौर से नहीं करता। इस बारे में इस्लाम का दृष्टिकोण यह है कि लड़कियों का पालन-पोषण करना अधिक पुण्य और सवाब का काम है और यह

आख़िरत की कामियाबी का बहुत बड़ा ज़रीआ है। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा है—

"अल्लाह जिस व्यक्ति को इन लड़कियों की वजह से थोड़ा-बहुत भी इम्तिहान में डाले और वह उनके साथ अच्छा सुलूक करे तो वे उसके लिए नरक से बचाव का ज़रीआ बनेंगी।" (हदीस : बुख़ारी)

एक अन्य हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जिसने लड़कियों का पालन-पोषण किया, आख़िरत में उसे मेरी संगति और साहचर्य प्राप्त होगा। आप (सल्ल॰) के शब्द हैं —

"जो व्यक्ति दो लड़कियों का (भी) उनके जवान होने तक पालन-पोषण करेगा, क़ियामत के दिन मैं और वह इस प्रकार (एक साथ) आएँगे।" यह कहकर आप (सल्ल॰) ने अपनी उंगलियों को मिलाकर दिखाया। (हदीस : मुस्लिम)

बच्चों से प्यार

बच्चों के प्रति प्यार स्वाभाविक है, लेकिन कुछ लोग इतने सख़्त और कठोर स्वभाव के होते हैं कि बच्चों के प्रति उनके दिल में न प्यार होता है, न स्नेह। कुछ लोग बच्चों के साथ हँसी-मज़ाक़ और प्यार-मुहब्बत को सभ्यता के विरुद्ध और प्रशिक्षण की दृष्टि से सही नहीं समझते। इसी तरह कुछ लोग इसे अपनी शान और बड़ाई के प्रतिकूल समझते हैं कि बच्चों के साथ बेतकल्लुफ़ी बरती जाय। ये सब बातें निराधार और ग़लत हैं। ये मनुष्य की पाषाणहृदयता को स्पष्ट करती हैं और प्रशिक्षण की दृष्टि से भी हितकर नहीं हैं। इस्लाम ने तो इस आचरण को बिल्कुल ही ना-पसन्द किया है। एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने हज़रत हसन (रज़ि॰) को प्यार किया तो अक़रा-बिन-हाबिस ने, जो वहाँ मौजूद थे, कहा कि मेरे दस बच्चे हैं, लेकिन मैंने कभी उनमें से किसी को प्यार नहीं किया। आप (सल्ल॰) ने बड़ी हैरत से उनको देखा और फ़रमाया—

"जो इनसान पर दया नहीं करता उसपर अल्लाह भी दया नहीं करता।" (हदीस : बुख़ारी)

माँ-बाप की ओर से लड़कियों को आमतौर से प्रेम भी कम मिलता है, लेकिन अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अपनी बेटियों से बड़ी मुहब्बत करते थे। हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) से तो आप (सल्ल०) को असाधारण प्रेम था। हज़रत आइशा (रज़ि०) से पूछा गया कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) सबसे अधिक किससे प्रेम करते थे? उत्तर दिया कि फ़ातिमा (रज़ि०) से। (हदीस : तिर्मिज़ी)

एक दूसरे मौक़े पर हज़रत आइशा कहती हैं कि जब हज़रत फ़ातिमा आतीं तो प्यारे नबी (प्रेम से) खड़े हो जाते, उनको लेने के लिए आगे बढ़ते, उनका हाथ पकड़ लेते, उन्हें चूमते और उनको अपनी जगह पर बिठाते। यही दशा हज़रत फ़ातिमा की थी कि जब आप (सल्ल०) उनके घर जाते तो वे खड़ी हो जातीं, आप (सल्ल०) को लेने के लिए आगे बढ़तीं। उनका पवित्र हाथ पकड़ लेतीं, उन्हें चूमतीं और अपनी जगह बिठातीं। (हदीस : अबू-दाऊद)

समानता का व्यवहार अपनाया जाए

खिलाने-पिलाने और लेन-देन में बच्चों के मध्य समानता का व्यवहार अपनाना चाहिए। एक बच्चे और दूसरे बच्चे के बीच फ़र्क़ करना अत्यन्त नापसन्दीदा बात है। इससे उनके बीच आपस में नफ़रत, दुश्मनी, ईर्ष्या और बैर पैदा होता है और माता-पिता के प्रति ग़लत-भावनाएँ पलने लगती हैं। हदीस में इससे मना किया गया है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का फ़रमान है—

"अल्लाह से डरो और अपनी सन्तान के साथ समानता का व्यवहार करो।" (हदीस : मिश्कात)

औलाद में लड़कियों के मुक़ाबले लड़कों को प्राथमिकता देना ओछापन और नीचता की बात है। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उस व्यक्ति को स्वर्ग की ख़ुशख़बरी दी है जो लड़कों और लड़कियों को एक

नज़र से देखे और उनके बीच समानता का बरताव करे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जिस व्यक्ति के लड़की हो, वह न तो उसे ज़िन्दा गाड़े, न उसके साथ नफ़रत का सुलूक करे और न उसकी अपेक्षा अपने लड़के को प्राथमिकता दे, तो अल्लाह उसे जन्नत में दाख़िल करेगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

शिक्षा-दीक्षा

इस्लाम अज्ञानता और निरक्षरता को नापसन्द करता है और चाहता है कि इल्म और ज्ञान का प्रकाश चारों ओर फैले। इसी लिए उसने सीखने-सिखाने को बड़ा श्रेष्ठ कार्य बताया है और हर मुसलमान पर लाज़िम किया है कि वह दीन की बुनियादी शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त करे। हदीसों में बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की ओर बार-बार ध्यान दिलाया गया है। एक हदीस में कहा गया कि माँ-बाप की ओर से औलाद को सबसे अच्छा उपहार और तोहफ़ा यह है कि वे उसे अच्छी शिक्षा दें और शिष्टाचार सिखाएँ और उनमें अच्छी आदतें पैदा करें। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

> "किसी बाप की ओर से बच्चे को अच्छे अदब से उत्तम कोई चीज़ नहीं मिली।" (हदीस : तिर्मिज़ी)

लड़कियों की पढ़ाई-लिखाई और शिक्षा-दीक्षा का पहले कोई महत्त्व नहीं समझा जाता था और इस सिलसिले में बड़ी लापरवाही दिखाई जाती थी। इस्लाम ने इसकी अहमियत को उजागर किया, इसे बड़ा पुण्य कार्य बताया और इसपर जन्नत की ख़ुशख़बरी दी। हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) उल्लेख करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जिसने तीन लड़कियों को पाला-पोसा, उन्हें चरित्र और शिष्टाचार सिखाया, उनकी शादी की और उनके साथ अच्छा सुलूक किया तो उसके लिए जन्नत (स्वर्ग) है।"
>
> (हदीस : अबू-दाऊद)

इस्लाम बच्चों को प्यार करने से नहीं रोकता, लेकिन वह इस चीज़ की ताकीद ज़रूर करता है कि यह प्यार मर्यादा का उल्लंघन न करे। इसी प्रकार एक ओर उसने बच्चों के पालन-पोषण, उनकी देखभाल और शिक्षा-दीक्षा की ज़िम्मेदारी डाली है और दूसरी ओर इस बात से भी सावधान किया है कि सन्तान के लिए धर्म और नैतिक मान्यताओं को भूल जाना और हराम-हलाल में अन्तर किए बिना उनकी तमाम इच्छाओं को पूरा करने में लग जाना, वास्तव में अपनी तबाही और बर्बादी मोल लेना है। क़ुरआन में है—

'ऐ ईमानवालो! तुम्हारे माल और तुम्हारी औलाद तुम्हें अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल न कर दे, और जो लोग इस प्रकार ग़ाफ़िल हो जाएँगे, वही घाटे में रहनेवाले हैं।' (क़ुरआन, 63:9)

यतीमों की सरपरस्ती

जिन बच्चों के सिर से उनके माँ-बाप का सहारा ख़त्म हो जाता है, सही ढंग से न तो उनकी दुनियावी ज़रूरतें पूरी होती हैं और न उनकी शिक्षा-दीक्षा ही का उचित प्रबन्ध हो पाता है। इसी लिए अक्सर वे जीवन की दौड़ में पीछे रह जाते हैं। उनके ग़लत रास्तों पर पड़ जाने की भी बड़ी आशंका रहती है। इस प्रकार के बच्चों की ज़िम्मेदारी इस्लाम ने उनके वारिसों पर डाली है। क़ुरआन कहता है—

"और वारिस पर भी उसी तरह की ज़िम्मेदारी है (जिस तरह बाप पर थी)।" (क़ुरआन, 2:233)

अगर यतीम के पास जायदाद, धन और दौलत हो तो उसकी देख-भाल, पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध उसके माल से हो सकता है, किन्तु उसके माल की सुरक्षा और उसमें वृद्धि की भी कोशिश की जाएगी। जो व्यक्ति इस सिलसिले में अपना समय और अपनी मेहनत लगाए और वह ग़रीब और मुहताज हो तो इस्लाम ने उसे नियमानुसार मुआवज़ा लेने की अनुमति दी है, किन्तु यदि वह मालदार हो तो उसे मुआवज़ा लेने से बचना चाहिए। क़ुरआन में है—

"यतीम का सरपरस्त अगर मालदार हो तो उसे उसके माल से बचना चाहिए, लेकिन अगर कोई ग़रीब हो तो दस्तूर के मुताबिक़ उसमें से खा सकता है।" (क़ुरआन, 4:6)

अगर यतीम मुहताज है और उसका वारिस भी इस हालत में नहीं है कि उसकी देखभाल कर सके तो ऐसी स्थिति में इस्लाम ने पूरे समाज को इस बात पर उभारा है कि वह आगे बढ़े और उसकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करे। हदीसों में यतीमों की सरपरस्ती, उनका पालन-पोषण और देखभाल को श्रेष्ठ कार्य बताया गया है। यहाँ केवल एक हदीस पेश की जा रही है—

अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"यतीम का पालन-पोषण करनेवाला, वह चाहे उसका कोई अपना ही हो या दूसरे का, वह और मैं जन्नत में इन दो (उँगलियों) की तरह होंगे। आप (सल्ल॰) ने अँगूठे के पासवाली और बीच की उँगली मिलाकर इशारा किया।" (हदीस : मुस्लिम)

इस सिलसिले में एक ख़ास बात यह है कि इस्लामी हुकूमत की ज़िम्मेदारियों में यह चीज़ भी शामिल है कि वह यतीमों की ज़रूरतों को पूरा करे और उन्हें असहाय और बेसहारा न छोड़े। अगर समाज यतीमों की देखभाल के सिलसिले में अपना नैतिक कर्त्तव्य महसूस न करे तो इस्लामी हुकूमत उन्हें अपनी सुरक्षा में लेगी और उनके पालन-पोषण का बोझ उठाएगी। अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इस्लामी हुकूमत के ज़िम्मेदार की हैसियत से फ़रमाया है—

"कोई आदमी क़र्ज़ या छोटे बच्चे छोड़ जाए (और उनके पालन-पोषण का प्रबन्ध न हो) तो मेरे पास आए, मैं उसका वाली (क़रीबी ज़िम्मेदार) और सरपरस्त हूँ।" (हदीस : बुख़ारी)

बेसहारा (लावारिस) बच्चों का पालन-पोषण

असहाय और बेसहारा बच्चों की समस्या बड़ी गम्भीर होती है। चूँकि इस बात का पता नहीं होता कि उनके माँ-बाप कौन हैं, इसलिए

किसी व्यक्ति पर क़ानूनी तौर पर उनकी ज़िम्मेदारी नहीं डाली जा सकती।

ऐसे बच्चों के प्रति समाज भी उदासीनता से काम लेता है। ऐसे लावारिस बच्चों के खाने-पहनने आदि की ज़िम्मेदारी इस्लामी हुकूमत की होती है। हज़रत उमर (रज़ि॰) के शासन-काल में एक व्यक्ति ने एक बच्चे को कहीं पड़ा हुआ पाया। वह उसे लेकर उमर (रज़ि॰) के पास आया। हज़रत उमर (रज़ि॰) को बताया गया कि यह व्यक्ति नेक और भरोसे के क़ाबिल है, तो उन्होंने उसी व्यक्ति से कह दिया कि तुम इसकी देखभाल करो, इसका ख़र्च हम बर्दाश्त करेंगे। (हदीस : मुवत्ता)

इस्लामी विधि-शास्त्रियों (फ़ुक़हा) ने लिखा है कि अगर किसी व्यक्ति को कहीं कोई बच्चा पड़ा हुआ मिले तो उसे उठा लेना भला और अच्छा काम है। वहीं छोड़ देने से उसके हलाक होने की आशंका हो तब तो उसे उठा लेना बिल्कुल ज़रूरी है। (हिदाया, 4:519)

बच्चों के बारे में इस्लामी शिक्षाओं के इस संक्षिप्त परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम बच्चे की सुरक्षा, पालन-पोषण, देखभाल और उनकी शिक्षा-दीक्षा की ज़िम्मेदारी में उसके माँ-बाप, परिवारवालों, समाज और हुकूमत सभी को शामिल करता है और क्रमशः इन सबको इस ज़िम्मेदारी का बोझ उठाने पर मजबूर करता है। अगर इस्लाम के इन आदेशों पर ठीक-ठीक अमल किया जाए तो केवल यही नहीं कि कोई बच्चा बर्बाद नहीं होगा बल्कि उसकी भौतिक और नैतिक आवश्यकताएँ भी आसानी से पूरी होंगी। इस प्रकार उसका स्वस्थ विकास भी होगा और वह एक धर्मपरायण और सुशील इनसान, आदर्श नागरिक और मानवजाति का अच्छा सेवक बनकर उभरेगा।

O O O